REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 3 | DECEMBER – 2017

हिंदी काव्य में पर्यावरण संरक्षण

डॉ. विनयकुमार एस. चौधरी
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, तुलजापुर (महाराष्ट्र).

प्रस्तावना :

वर्तमान समय संक्रमण का युग है। मानवीय गौरव में विश्वास और आस्था लगभग खत्म हो रही है। वैज्ञानिक प्रगति तथा प्रौद्योगिक विज्ञान ने जहाँ मनुष्य को सुविधा संपन्न बनाया वहीं उसके मानवीय मूल्यों को दूर तक प्रभावित किया। स्वार्थपरता की अंधी दौड में मनुष्य ने अपने को विनाश के कगार पर खडा कर लिया है। आज संपूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण की भयावहता से परेशान है। पर्यावरण में हो रहे निरंतर असंतुलन एक गंभीर चिंता व चिंतन का विषय है। ऐसी स्थिति में हमें साहित्य में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता वैदिक काल से ही मिलती है। हमारे वेद, पुराणा, उपनिषद व अन्य धर्म ग्रंथो मे पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूता मिलती है। प्राचीन साहित्य में प्राकृतिक शक्तियों को वंदनीय माना गया है क्योंकि पृथ्वी तथा प्राकृतिक शक्तियों के बीच संतुलन पर ही मानव का अस्तित्व निर्भर है। संभवतः यही कारण है कि ऋषियों ने धरती तथा उसके प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का संदेश दिया है। भारत में तो प्रकृति की पूजा होती थी। अग्नी, वायू, धरती, जल सभी को देवता माना जाता था। परंतु आधुनिक युग के भौतिक विकास ने मानव और प्रकृति को एक दूसरे को सहयोगी और पूरक नहीं रहने दिया हैं। जीवधारियों का अस्तित्व पर्यावरण पर ही आधारित है। पर्यावरण सजीव और निर्जिव घटकों का एक जटिल तंत्र है। पर्यावरण से अभिप्राय जीव को चारो ओर से घेरे उन सभी भौतिक स्वरूपों से है। जिनमें वह रहता है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण वायू, जल, मिट्टी पेड, पौधों, जीव–जंतु, मानव तथा उसकी विभिन्न गतिविधियों के परिणाम का मिला जुला स्वरूप है। पर्यावरण शब्द 'परि' उपसर्ग के साथ आवरण शब्द के संयोग से बना है। परि का अर्थ है चारो ओर, 'इर्द–गिर्द, आसपास या परिधि। पर्यावरण उन सभी दशाओं और प्रभावों का योग है, जो जीवधारियों के जीवन, उनकी जीवन शैली, उनकी दिनचर्या, उनके विकास को प्रभावित करता है।

मनुष्य का संपूर्ण जीवन प्रकृति के आंगन में पुष्पित, पल्लवित और विसर्जित होता है। प्राण दायिनी प्रकृति मनुष्य की सर्वदा ही प्ररेक एंव आकर्षण का केंद्र रही है। हिंदी साहित्यकार भी प्रकृति की प्ररेणा से ही अपनी सर्जना को पल्लवित एंव पुष्पित करता आया वैसे तो भारतीय साहित्य में प्रकृति का उपदेशिका रूप प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। अपने मूल कार्य कलापों से प्रकृति सदुपदेश देती है, जिससे चेतन मानव अपने व्यवहार को निरंतर उदार बना सकता है। पर्यावरण का प्रभाव व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं बौध्दिक विकास को प्रभावित करता है। फिर भला साहित्य कैसे न प्रभावित होता ? साहित्यकार तो हमेशा ही प्रकृति प्रेमी रहे हैं। प्रकृति उनके सुख–दुख की सहचरी रही है, बावजूद इसके आज हम अपने निजी स्वार्थों के चलते प्रकृति को नष्ट करते जा रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण प्रदूषण आज की ज्वलंत समस्या है। भौतिकवादी मानव आधुनिकता के नशे में धूत पर्यावरण के भौतिक रूप के आकर्षण व महत्ता की अनुभूति करने में अनिच्छुक रहा है। फलतः पर्यावरण का शोषण एवं विनाश हो रहा है। परिणाम स्वरूप भूमंडलीय तापमान में बढोत्तरी, वनों के आच्छादन में निरंतर कमी–प्रदूषण, असंतुलित पर्यावरण, विभिन्न प्रकार की बीमारियों एवं उसके प्रकोप में बढोत्तरी हो रही है। बढती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव पड रहा है। जिससे संपूर्ण जीव जगत एवं पर्यावरण में अवनयन प्रारंभ हुआ है। अनेक देशों में राष्ट्रीय उद्यान, वन्य जीवन अभयारण्य आदि की स्थापना एवं पर्यावरण संतुलन को पुनर्स्थापित करने के प्रयास शुरू किये गये है, किंतु यह प्रयासपर्यावरण प्रदूषण की भयावहता को देख कम ही है। प्रकृति के संरक्षण एवं पर्यावरण के प्रति साहित्य

विनाश से हमेशा साधक रहा है। हिंदी साहित्य में जलसंरक्षण एवं प्रकृति संरक्षण व पर्यावरण विनाश से उत्पन्न भयावहता को साहित्यकारों ने अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत कर जनता को सचेत करने का प्रयास करने के लिए उन्हें देवता के रूप में तो कहीं पर्यावरण संतुलन की वजह से उसके दूरगामी प्रभावों के प्रति सोचने को बाध्य करती हैं तथा मनुष्य जीवन में उसकी उपयोगिता को देखते हुए इसका सरंक्षण आवश्यक मानती है। इसका महत्व वैदिक साहित्य में ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर समकालीन में भी अंकित है। जहाँ पेड–पौधों और नदी–सरोवर की उपासना के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। साहित्यकार संकेत करते हैं कि ये पर्यावरणीय घटक परमार्थ में संतो की तरह हैं जो अपना सबकुछ देकर हम लोगों का पालन करते हैं–

'तरवर सरवर संत जन चौथो बरसैमेह,
परमारर्थ के कारण, च्यारू, धारी देह।'

वृक्ष–लता, तालाब, संत और बादल परमार्थ करते रहते हैं। फिर हम क्यों न स्वंय की रक्षा के लिए उन्हें संरक्षण प्रदान करें। संत कबीर भी प्रकृति घटकों की परमार्थ सेवा के बारे में लिखते हैं।

'वृक्ष कबहूँ न फल भखै, नदी न संचे नीर।
परमारथ के कारणे साधु न धरा शरीर।

आजकल हम अपनी सुख सुविधा के लिए पेड–पौधों को नष्ट करते जा रहे हैं। कवि रसखान प्रकृति सौंदर्य के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तत्पर थे–

'नैनन सो रसखान जब ब्रज के बन'बाग तडाग निहारो
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौ।'

प्रकृति सौंदर्य मन को सुख और शांति प्रदान करती है साथ में हमें जीवनोपयोगी सुविधायें भी देती है फिर भी हम इनका निरंतर दोहन करते जा रहे है। पर्यावरण को संरक्षण प्रदान करने के लिए हमें कवियों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। संत तुलसीदास पंचमहाभूतों के महत्व को स्वीकार करते है जिससे हमारा शरीर निर्मित है, जिनके अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती–

'छिती जल पावक गगन समीरा।
पंच तत्व से रचित शरीरा।'

हम इन पंचतत्वों को प्रदूषित करते जा रहे है। परिणाम स्वरूप अनेक बीमारियों के शिकार हो रहे है।पर्यावरण प्रदूषण के कारण जनम लेता बच्चा भी रोग लेकर पैदा हो रहा है। पर्यावरणीय सामंजस्य से कैसा अनुपम सुख व शांति प्राप्त होती है व प्रेम स्पंदन स्फुटित होता है। कविवर तुलसीदास रामचरितमानस में लिखते है–

'फुलहि फलहि सदा तरू कानन। रहहि संग गज पंचानन
खग मृग सहज वयरू बिसराई। सबहि परस्पर प्रीति बढाई।'

विद्यापति तो गंगा स्तुति के माध्यम से अपनी धार्मिक आस्था इस तरह व्यक्त करते हैं–

'बड सुख सार पाओल तुअ तीरे। छोडइत निकट नयन वह नीरे।।
कर जोरि बिनमओं विमल तरंगे। पुन दरसन होए पुनमति गंगे।
एक अपराध छेमब मोर जानी। परसल माय पाय तुअ पानी।'

जहाँ कवि पैर से जल छू जाने पर मां गंगा से क्षमा याचना करते है वहाँ आज हम सब उसी पुनित गंगा में कूडा–करकट, नाली का पानी व रासायनिक पदार्थ डालकर उन्हें जहरीला बनाने में कोई भी कमी नहीं

छोडी है। जब जल संरक्षण की बात चल रही हो तब भला संत कवि रहिम के उस दोहे को कैसे भूला जा सकता है?

'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सून
पनी गये न उबरे, मोती मानुष चून।।'

अगर हम प्रकृति को संरक्षण प्रदान करते हैं तो वह हम पर सर्वस्व न्यौछावर कर देती हैं। रहिमदास कहते हैं–

'तरूवर फल नहीं खात है, सरवर पियत न पान
कह रहिम पर काज हित, संपत्ति संचहि सुजान।'

कृष्णभक्त कवि सूरदास ने भी गंगा को मुक्ति दायिनी परम पवित्र तथा वरदान देनेवाली बताया है–

'अति पुनीत विष्णू पादोदक, महिमा निगम पढत गुन चैन
परम पवित्र मुक्ति की दाता, भागीरथी भई वर दैन।'

कवि रसखान वर्णित 'गंगा महिमा' तो अदभूत है। उनकी दृष्टि में गंगा जल में जीवन रक्षक औषधि गुण निहित है, जो विष के दुष्प्रभाव को प्रभावहीन कर सकते है–

'बैद की औषधि खाऊँ, कछू न करो व्रत, संजम री सून मोसे
तैरोई पानी पियौ 'रसखानि' संजीवन लाभ लहौं सुख तोसे
एरी सुधापमी भागीरथी, कोउ पथ्य कुपथ्य करैं तऊ पोसे
आक धतूरे चबात किरै विष खात फिरै सिव तेरे भरोसे।'

जिस गंगाजल को हमारे प्राचीन एवं मध्ययुगीन कवियों ने अमृत तुल्य बतलाया है। अर्थात जल मनुष्य को प्रकृति द्वारा एक ऐसा अमूल्य वरदान है जिसके बिना मानव जीवन के साथ–साथ चराचर जगत के अस्तित्व की भी कल्पना नहीं की जा सकती। जल का महत्व अनुपमेय हैं। कहा जाता है कि सृष्टि के पूर्व सब जलमय था और अंत भी जलमय होगा। छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' मे इस तथ्य को स्विकारते है–

'नीचे जल था, उपर हिम था, एक तरल था, एक सघन।
एक तत्व की प्रधानता, कहो उसे जड या चेतन।'

निश्चित ही समष्टि का कण–कण जलधारा से स्पंदित है। जल से सिंचन बीज, पौधे, पुष्पित–पल्लवित और फलित होते हैं। भूमि शस्य श्यामल बनती है, हरीतिमा ओढे धरती सबको आकर्षित करती है। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति से लेकर विकास के विभिन्न मार्ग जल के महत्व को आत्मसात करके ही आगे बढने में समर्थ होते हैं।

आधुनिक कवियों को प्रकृति सहचरी के समान प्रतीत होती है। साहित्यकारों ने प्रकृति को कभी आलंबन रूप में चित्रित किया है तो कभी सहचरी के रूप में उसे प्यार किया तो कभी संसार का सबसे सुंदर आभूषण समझा। कभी उनमें अनन्य शक्ति का वास देखकर आश्चर्य चकित और मुग्ध हुए तो कभी मातृ शक्ति के रूप में उसकी पूजा की। कभी उन्हें सुख–दुख की छाया प्रकृति में दिखाई पडी तो कभी उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ गुरू मानकर उससे सीखने का प्रयत्न किया। कवि सुर्यकांत त्रिपाठी निराला प्रकृति को रूपक के माध्यम से गृहिणी के रूप में देखते है जो सबका खयाल रखती हैं–

'यह श्री पावन, गृहिणी उदार
गिरिवरउरोज सरि पयोधार
कर वन – तरू फैला फल निहारी देती,
सब जीवों पर है एक दृष्टि
तृण – तृण पर उसकी सुधा वृष्टि'

वर्तमान समय में महानगरों में स्वच्छ वायु कल्पना मात्र रह गयी है। मिलों से चिमनियों का धुआँ, गाडियों व अन्य संसाधन वायु प्रदुषण को जन्म दे रहे है। इससे अनेक रोगों का जन्म हो रहा है जो हमारे लिए घातक है। भौतिक प्रगती और संपन्नता की होड ने आज नदियों की पवित्रता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। गंगा सूखती जा रही हैं। जब तक हम प्रकृति को संरक्षण प्रदान करते है तब वह हमारे लिए जीवन दायिनी बनकर हमारा पोषण करती है परंतु जब हम उसका विनाश करते है तो वह ध्वंसात्मक रूप धारण कर हमारा विनाश करती है। वर्तमान समय में कही अधिक वर्षा से बाढ तो सूखा कहीं तूफान से तबाही तो कहीं भूकंप आदि रूपों से प्रकृति हमारा बदला लेती है। पेड लगाने के बजाए हम काटते है। भवानी प्रसाद मिश्र आज के पेड – पौधे की स्थिति का वर्णन इस प्रकार करते है –

'कहीं नही बचे हरे वृक्ष। न झील सागर बचे हैं न नदियाँ
पहाड उदास है और झरने लगभग चुप
आंखों में घिरता है अंधेरा धुप
दिन दहाडे यो, जैसे तलवार में बदल गई हो दुनिया।
आसमान में चक्कर काटते। पंछियों के दल नजर नहीं आते,
क्योंकि बनाते थे जिन परवे घोसले
वे वृक्ष या कट चुके हैं या सूख चुके हैं।
क्या जाने अधुरे और बंजर हम
अब किस बात के लिए रूके हैं।'

तमाम कवि गण पर्यावरण प्रदुषण से चिंतित है, इसीलिए अपने प्रभावों के प्रति चिंता व्यक्त करते है – रामदरश मिश्र लिखते है –

'ओह कैसी हवा चल रही है आज कल
कि अमराई के सारे बौर, देखते झुलस जाते हैं।
बच्चे पैदा होते हैं – विकलांग हो जाते हैं।
अन्न खाने से पहले अपच करने लगता है
नदियाँ अपना जल दिये। खुद ही प्यासी रह जाती हैं।
बादल आकर बिना बरसे, जल लिये लौट जाते हैं।
धरती के रस को पीती हुई। बालियाँ फसलों के कंधो पर
लाशों की तरह लटक जाती हैं। हवाएं, हवाएं, हवाएं। ।
आंसू गैस भर गयी है। हर आंख में।''

ऐसी ही स्थिति पर्यावरण की रही तो आनेवाली पीढी हमारे बारे में क्या कहेंगी ?

प्रकृति को बचाओ का नारा लगाते हुए कवि विश्वनाथ प्रसाद लिखते हैं –

इन्हें बचाओ ! इन्हें बचाओ !!
कल को निकलने वाले अंकुर तुम्हे गालियाँ देंगे
कहेंगे
कितने नपुंसक और पागल थे वे लोग
जिन्होंने हमारी सृष्टि नष्ट कर दी।'

भोगवादी संस्कृति वैज्ञानिक चमत्कारों की अंधी दौड में, कंक्रीट के जंगल खडे करके दमघोटू वातवारण तथा विषाक्त होते जल संसाधन, कार्बनडाईड आक्साइड के सघनीकरण से तापमान में वृध्दि, जलवायू परिवर्तन एवं ग्लोबल वार्मिग के खतरे एवं चुनौतियां, हाल के वर्षों में पृथ्वी के तापमान में वृध्दि के परिणाम हरी भरी पृथ्वी का विनाश हमारे देश को किस दिशा में पहुंचा रहे है चिंतनीय विषय है। इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खडे मनुष्य को यह फैसला करना है वे वैदिक संस्कृति अपनाकर आनेवाली पीढी को स्वस्थ जीवन का वरदान देना चाहते हैं या उनके पैरों के नीचे की जमीन छीनना चाहते है। पर्यावरण को बेहतर बनाये रखने के लिए हमें प्रकृति के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। कवि त्रिलोचन लिखते हैं।

'इस पृथ्वी की रक्षा मानव का अपना दायित्व है,
इसकी वनस्पतियां चिडियां और जीव – जंतु
उसके सहयात्री है, इसी तरह जलवायू और सारा आकाश
उसकी सहयात्री है, इसी तरह जलवायू और सारा आकाश
उसकी रक्षा में मानव की या तो रक्षा है,
नहीं तो सर्वनाश अधिक दूर नहीं।'

संदर्भ संकेत :

1) पी. सी. त्रिवेदी / गरिमा गुप्ता – पर्यावरण अध्ययन
2) डॉ. सदानंद भोसले – साहित्य और मानवीय संवदेना
3) गीता रानी – मलिक मुहम्मद जायसीका काव्य और उदात्ततत्व
4) इंदिरा गांधी – पर्यावरण का संरक्षण